Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-12, Issue-2, September-2018

पूर्वमध्य कालीन भारत में जैन धर्म : चन्देल वंश के विशेष संदर्भ में

विशाल विक्रम सिंह
शोधार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) E-mail veesuthakur1990@gmail.com, Mob.No. 7049744841

शोध सारांश

उत्तर वैदिक काल में प्रचलित सनातन धर्म में व्याप्त कर्मकाण्डों एवं अन्धविष्वास के चरम पर पहुँचने के कारण छठी शताब्दी ई0 पू0 में धार्मिक आन्दोलन के अन्तर्गत बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं कई अन्य सम्प्रदाय प्रकाष में आये। बौद्ध एवं जैन धर्म को अनेकों राजाओं का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस युग में जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी का आगमन हुआ। चौबीसवें तीर्थंकर के आधार पर जैन धर्म को अधिक प्राचीन माना जा सकता है। पूर्वमध्य काल में भारतवर्ष में अनेकों राजवंषों का उदभव हुआ एवं शक्ति की पूजा करने के कारण अधिकांष शैव मतावलम्बी होने लगे। इसके पष्चात भी जैन मंदिरों के निर्माण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में जैन धर्म को भी संरक्षण प्रदान किया गया। भारत में जिन राजवंषों ने जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया, उनके राजवंषों के शासकों द्वारा जैन धर्म के लिए किये गये कार्यों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इस धर्म के विषय में बतलाया गया है। चन्देलों के द्वारा निर्मित करवाए गये खजुराहो मंदिर समूह में शैव एवं वैष्णव धर्म के साथ–साथ जैन मंदिरों के निर्माण का वर्णन करते हुए उनके धार्मिक साहचर्य को प्रस्तुत किया गया है। चन्देल राजवंष भी अन्य की भाँति शैव मतावलम्बी थे एवं मध्य भारत में प्रतिहार शासकों के पष्चात बुन्देलखण्ड की महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में इनका उद्भव हुआ था। इस कारण शोधपत्र में इन्हे विषेष सन्दर्भ में लाते हुए पूर्वमध्य काल में सम्पूण भारत में जैन धर्म की स्थिति का उल्लेख किया गया है।

कुंजी शब्दः– पूर्वमध्य काल, जैन धर्म, बुन्देलखण्ड, चन्देल वंष, खजुराहो

शोधपत्र

भारत को एकता में अनेकता का देश इसकी भाषा या क्षेत्र के आधार पर ही नहीं कहा जाता , बल्कि इसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष धर्म भी है। पश्चिमी सभ्यता की भांति कोई एक धर्म न होकर भिन्न–भिन्न धर्मों का समागम है। वर्तमान में प्राप्त होने वाले ईसाई धर्म या मुस्लिम धर्म के उदय का इतिहास यहाँ अधिक प्राचीन नहीं है। ये धर्म क्रमशः ईसाई मिशनरियों एवं मुस्लिम शासकों के भारत में आगमन के पश्चात् ही प्रारम्भ हुए, परन्तु इनके अतिरिक्त भी अनेकों धर्म जैसे :– बौद्ध धर्म , जैन धर्म, सिक्ख धर्म, शैव धर्म, शाक्त धर्म, वैष्णव धर्म इत्यादि प्राप्त होते हैं। आधुनिक इतिहास के अन्तर्गत ये समस्त धर्म हिन्दू धर्म का ही एक अंश है। हिन्दू धर्म प्राचीन सनातन धर्म का ही दूसरा रूप है जिसका प्रयोग मुस्लिम आक्रान्ताओं के आगमन के पश्चात् से माना जाता है। सनातन धर्म का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है एवं ये समस्त धर्म इन्हीं से उत्पन्न हुये हैं। बौद्ध एवं जैन धर्म के पूर्व इस धर्म में अनेकों कर्मकाण्ड व्याप्त हो गये एवं यह वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले उच्च जातियों के अर्थात ब्राह्मण एवं क्षत्रियों हेतु ही सुरक्षित हो गया। इन बुराइयों के विरोध मे ही बौद्ध एवं जैन धर्म का उदय हुआ। छठी शताब्दी ई.पू. का समय धार्मिक आन्दोलन के रूप में जाना जाता है। क्योंकि इसमें जैन एवं बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों का भी उदय हुआ। जिसमें आजीवक सम्प्रदाय, घोर अक्रियावादी सम्प्रदाय, उच्छेदवादी सम्प्रदाय, भौतिकवादी सम्प्रदायों को स्थान प्राप्त हुआ। ये सभी भिन्न–भिन्न विचारों के साथ अपने सम्प्रदाय का विस्तार करने में लगे रहे। लेकिन इनके बाद भी बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म को अधिकांश लोगों ने अपनाया। इसके अन्तर्गत रूढ़िवादी

विचार धाराओं की कमी एवं जन साधारण तक सुगम पहुंच ने इन्हें लोगों के मध्य लोकप्रिय बना दिया। बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध एवं जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म लगभग एक ही समय में हुआ था।

जैन धर्म के विकास का काल छठी शताब्दी ई.पू. अर्थात महावीर के जन्म से माना जाता है। जैन धर्म में महावीर से पूर्व अन्य तेईस तीर्थंकर भी हुए, इस आधार पर इसे अत्यन्त प्राचीन धर्म की संज्ञा भी प्रदान की जाती है। अरिष्टनेमि नामक तीर्थंकर को कृष्ण का समकालीन भी कहा जाता है। जैन धर्म में उल्लिखित शब्द 'जैन' का मूल उद्भव जिन से माना जाता है। जिसका अर्थ विजेता होता है। जिन वे कहलाते थे जो अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लेते थे। जैन धर्म के उद्भव के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। परन्तु पुरातत्ववेत्ताओं के द्वारा भारत में उदयगिरि एवं जूनागढ़ से ऐसे पुरास्थल खोजे गये हैं जो ये दर्शाते है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पूर्व ही भारत में आ चुका था।[1] इस धर्म के शिक्षकों को तीर्थंकर कहा जाता था। चौबीस तीर्थंकारों में ऋषभ देव पहले तीर्थंकर हुये। इनका जन्म अयोध्या में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि ऋषभदेव को लगभग 1000वर्षों तक ध्यानमग्न होना पड़ा जिसके पश्चात् उन्हें कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुयी। इसके अतिरिक्त चौबीसवें तीर्थंकर के रूप में महावीर स्वामी का जन्म हुआ। इन्होंने माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् लगभग 30 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग दिया। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् महावीर ने जैन धर्म में वर्णित चार महाव्रतों सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य के साथ पांचवें महाव्रत अहिंसा के रूप में प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में जैन धर्म को बौद्ध धर्म की भांति राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। शनैः शनैः बौद्ध धर्म ने अपने नियमों में परिवर्तन किया परन्तु जैन धर्म में परिवर्तन न होने के कारण यह जन सामान्य से दूर होने लगा। इनकी कठिनता के कारण ही जैन धर्म दो भागों में विभक्त हो गया। एक पंथ श्वेताम्बर एवं दूसरा पंथ दिगम्बर सम्प्रदाय को मानने लगा। बौद्ध धर्म की भांति इसे उत्तर भारत में राजकीय संरक्षण प्राप्त न होने से इसका विस्तार इस क्षेत्र में कम हो गया। मौर्यो के पश्चात् शुंग काल में ब्राह्मण धर्म का विकास हुआ एवं कुषाणों के आगमन से बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त हो गया। जो इस धर्म के लगभग लुप्त होने का जिम्मेदार था।

पूर्व मध्य काल में हिन्दू धर्म को शासकों द्वारा राजकीय धर्म बनाया गया, परन्तु इस काल में जैन धर्म की शिक्षाओं में किये गये परिवर्तनों के कारण यह लोगों के मध्य लोकप्रिय होने लगा। वैदिक धर्मों को मानने वाले शासकों के द्वारा जैन मंदिरों को बड़े–बड़े दान भी दिये जाते थे। जैन धर्म न केवल वैश्य समुदाय के मध्य ही विकसित हुआ, अपितु कृषि कार्य करने वाली जनसंख्या के मध्य भी प्रचलित होने लगा। राष्ट्रकूट शासक भी जैन संतों के अनुयायी बनने लगे थे। जैन धर्म के विकास में होने वाली कमी के कारण जैन आचार्यो के द्वारा राष्ट्र कूट राज्य में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था जिसका उदाहरण जैन विद्वान हेमचन्द्र द्वारा कुमार पाल का गुरू बनना है।[2] इस काल के राजपूत शासक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे, अतः वे शिव की उपासना करते थे। इन शासकों में गुहिलोत वंश, चाहमान वंश, राष्ट्रकूट वंश, परमार वंश, हैहय वंश, चंदेल वंश, प्रतिहार वंश आते हैं। इन सभी राजवंशों ने शैव धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया परन्तु जैन धर्म के प्रति इन्होंने सहिष्णुता प्रदर्शित की। 9वीं–दसवीं शताब्दी के मध्य राष्ट्रकूट शासकों के द्वारा दक्षिण में इस धर्म का अधिक विकास हुआ। उत्तर भारत में राजस्थान, मालवा तथा गुजरात के अतिरिक्त जैन धर्म को आश्रय प्राप्त नहीं हुआ था।[3] शैव मतावलम्बी होने के बाद भी इन शासकों ने जैन मंदिरों तथा जिनालयों का निर्माण करवाया। जैन धर्म को लुप्त होने से बचाने तथा एक सजीव उत्प्रेरक धर्म बनाने का कार्य राजस्थान के जैन आचार्यो द्वारा किया गया। जैन धर्म के दो प्रमुख कला केन्द्रों के रूप में उज्जैन तथा मथुरा को सम्मिलित किया जाता है। कुषाणों के समय में मथुरा जैन धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। कलिंग का चेदि शासक खारवेल भी जैन धर्म का संरक्षक था।

पांचवी शताब्दी ई. में द्वितीय जैन सभा का आयोजन देवर्धिक्षमाश्रमण के निर्देशन में वल्लभी में हुआ, जिसमें पहले के ग्यारह अंगों को वर्तमान में उपस्थित 12 अंगों में विभक्त किया गया।[4] वल्लभी का चयन करने से यह सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र जेन आचार्यो के पहुंच हेतु आसान था। उत्तर भारत में संरक्षण न प्राप्त होने के कारण जैन आचार्य गुजरात चले गये। पूर्वमध्य काल में जैन धर्म को संरक्षण प्रदान करने वाले क्षेत्रों में गुजरात का प्रमुख स्थान है। पांचवी शताब्दी के लगभग आनन्दपुर (आधुनिक मेहसान जिले के वाडनगर) में ध्रुवसेन नाम का राजा शासन करता था जो अपने पुत्र को खो चुका था। अतः उसे सान्त्वना देने हेतु धनेश्वरसूरि ने कल्पसूत्र की रचना की, साथ ही उद्योतनसूरि की कुवलयमाला से भी यह ज्ञात होता है कि गुजरात में छठीं–सातवीं शताब्दी ई.पू. में अधिकांश जैन मंदिरों का निर्माण हुआ।[5] वनराज चावड़ों के काल में जैन धर्म को गतिशीलता प्राप्त हुयी इन्होनें गुजरात के अन्हिलवाड़ जिले में पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण करवाया एवं इनके मंत्रियों में चम्पू एवं लाहिर जैसे जैन मंत्री शामिल किये गये थे।[6] इसके अतिरिक्त भी कई ऐसे उदाहरण प्राप्त होते है जिनके आधार पर यह कहा जाता है कि पूर्व मध्यकाल में गुजरात जैन धर्म के लिए उपयुक्त स्थान था। इन कालों में बल्लभी के मैत्रक और चावड़, सोलंकी तथा अन्हिलवाड़ के बघेल राजवंशों ने भी अपना संरक्षण इन्हें प्रदान किया एवं भूमि भी दान में दी। कई जैन आचार्य गुजरात के शासकों के गुरू भी थे। वीरसूरि को चामुण्डराज का गुरू नियुक्ति किया गया था। चामुण्डराज का मंत्री वीर भी जैन धर्म का समर्थक था।

ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में गुजरात जैन धर्म के विकास का प्रमुख केन्द्र रहा। गुजरात के शासक दुर्लभ राज के समय में विक्रम संवत 1080 या 1024 ई में अन्हिलपाटक में एक सभा का आयोजन किया गया है, जिसमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सन्त जिनेश्वर के द्वारा चैत्यवसिन पर विजय प्राप्त करने से उत्तर भारत के जैन आचार्यो में उनका वर्चस्व बढ़ गया।[7] इनके शासन के पश्चात् राजाओं के द्वारा विभिन्न मंदिरों का निर्माण करवाया गया था। भीम प्रथम के द्वारा अबू में एक आकर्षक मंदिर का निर्माण करवाया गया जिसका निर्माण दण्डाधीप विमल ने किया एवं इस मंदिर को ऋषभ देव को समर्पित किया गया। इस मंदिर से प्राप्त जैन अभिलेख विक्रम संवत 1119 के द्वारा भीम प्रथम के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। विक्रम संवत 1112 का एक जैन अभिलेख भी प्राप्त हुआ, जिसमें राजा के द्वारा जैन मठो को दान देने की बात कही गयी है। साथ ही इसमें एक सादाक नामक व्यापारी का उल्लेख भी प्राप्त हुआ है।[8] राजाओं से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की पुस्तकों का लेखन भी इस काल में किया गया। जयसिंह सिद्धराज उत्तर भारत का शैव मतानुयायी शासक था। इसके समय में साहित्यों के रूप में भृगुकच्छ के देवप्रसाद द्वारा निसिथसूत्र की रचना विक्रम संवत 1157 में गयी जिसमें श्री जयसिंह की क्षेत्र विजयों का वर्णन प्राप्त होता हे। प्रभावक चरित्र के अनुसार देवसूरि (साधारण नाम श्रीदेव) ने मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, कश्मीर में अपने विरोधियों को पराजित किया।[9] उदाहरण – इन्होनें कश्मीर के सागर को नागोर में शैव सम्प्रदाय के पंथ को दिगम्बर सम्प्रदाय के गुणचन्द्र को चित्रकूट में भागवत आचार्य शिवभूति को पराजित किया। इसके अतिरिक्त कर्नाटक के कुमुदचन्द्र की विजय इनके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुयी। ऐसे भी वर्णन प्राप्त होते है कि जैन मुनियों के आग्रह करने पर राजाओं के द्वारा करों में छूट भी प्रदान की जाती थी।

जयसिंह सिद्धराज के काल में जैन अनुयायियों को अत्यधिक संरक्षण प्राप्त हुआ। इसके समय के अधिकांश अभिलेख तथा स्थापत्य इसकी सूचना प्रदान करते है। इसके पश्चात् आये शासकों ने भी शैव मतानुयायी होने के बाद भी जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया।

गुजरात की तरह राजस्थान में भी जैन धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ। यहाँ पर भी वैश्य समुदाय में इसकी महत्ता अधिक थी। राजस्थान की शाखाओं में शाकम्भरी के चाहमान शासक, नाडोल के चौहान शासक, जालोर के चौहान या चाहमान शासक, राजस्थान के परमार शासक, राजस्थान के गुहिल शासकों में अधिकांश ने जैन धर्म के संरक्षण प्रदान किया। जिससे यह

सिद्ध होता है कि पूर्व मध्य काल में राजस्थान में भी जैन धर्म का विकास हुआ। प्रत्येक राजवंशों में जैन धर्म की स्थिति का विवरण इसकी प्रमाणिकता को सिद्ध करता है। ह्वेनसांग के अनुसार जैन धर्म तक्षशिला से दक्षिण भारत की ओर विस्त्रित हो रहा था। ह्वेनसांग ने राजस्थान के भीनमाल एवं वैराट का भ्रमण किया एवं देव मंदिरों का उल्लेख करते हुए कहा कि इन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त जैन एवं ब्राह्मण धर्म का भी उद्भव हुआ है।[10] बसन्तगढ़ मंदिर के 687 ई. के अभिलेख पर ऋषभदेव का चित्र प्राप्त होने से 7वीं शताब्दी में जैन धर्म का राजस्थान में प्रादुर्भाव माना जाता है।[11] ह्वेनसांग के अतिरिक्त कुछ मुस्लिम इतिहासकारों ने भी राजस्थान के जैनों के विषय में वर्णन किया है इसमें अबुजैदुल ने उन व्यक्तियों का वर्णन किया है जो पहाड़ो ओर जंगलों में घूमते है और लोगों से बहुत कम वार्तालाप करते हैं। इनमें अधिकांश लोग नग्न अवस्था में रहते हैं। ऐसा नहीं था कि नग्न रहना हिन्दू धर्म में नहीं था परन्तु अबूजैदूल ने इन्हें जैन ही बताया है। असराल बिलाद नामक यात्री ने 13वीं शताब्दी के लेखन में मिशोरबिन मुहलहित अजैबुलदान के लेख की जानकारी को लिखते हुए कहा कि सिन्धु के निकट सैमूर के शहर में रहने वाले काफिर माँस, मछली, अण्डा नहीं खाते थे, भले वे अत्यन्त कठिन स्थिति में हो, इसके बाद भी वे माँस का भक्षण नहीं करते थे।[12]

चाहमान शाखाओं में शाकम्भरी के चाहमान अधिक महत्वपूर्ण स्थिति में थे। इनमें से अधिकांश शासक हिन्दू धर्म के संरक्षक थे। जिनमें शैव धर्म को मानने वाले शासकों की संख्या अधिक थी। पृथ्वीराजविजय के अनुसार इस वंश के शासक अन्य धर्मो के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। क्योंकि इनके समय में जैन तीर्थो का निर्माण यह प्रमाणित करने के लिए उपयुक्त है। इस क्षेत्र में पृथ्वीराज प्रथम के द्वारा रणथम्भौर जैन मंदिर में सोने के गुम्बद का निर्माण करवाया गया जो उसके जैन धर्म के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करता है। इसके पश्चात् आये शासकों में अजयराज ने अजयमेरू (अजमेर) में जैन मंदिर बनाने की आज्ञा दी एवं सोने का कलश भी दान दिया। अजयमेरू (अजमेर) पूर्व मध्यकाल से ही जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र था तथा बिजौलिया पाषाढ़ अभिलेख 1170 ई. के अनुसार यह मंदिर वर्धमान को समर्पित था एवं इसका निर्माण प्रागवत कुल से सम्बन्धित जैन परिवार के सदस्यों द्वारा कराया गया था।[13] यहाँ से अनेकों अभिलेखों के रूप में फलौधी (प्राचीन फलवर्धिका) से प्राप्त 1221 विक्रम संवत का अभिलेख, 1216 विक्रम संवत का अभिलेख, अजयमेरू के निकट पृथ्वीपुरा से प्राप्त विक्रम संवत 1198 का अभिलेख जैन धर्म से सम्बन्धित है। साथ ही खरतार गच्छ से सम्बन्धित श्वेताम्बर भिक्षुओं के क्रिया कलाप हेतु यह एक उपयुक्त क्षेत्र था। विग्रहराज चतुर्थ के द्वारा जैन मंदिर पर राजकीय ध्वज फहराने से जैन धर्म को प्राप्त राजकीय संरक्षण प्रमाणित होता है। सोमेश्वर के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीराज तृतीय के द्वारा भी जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया गया। इसके काल में रामदेव नामक जैन अधिकारी निवास करता था। इनके दरबार में आयोजित वादविवाद प्रतियोगिता में खरतार सन्त ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के पद्मप्रभा को पराजित किया था।

राजस्थान के राजनैतिक इतिहास में नोडल के चाहमान शासकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। इन शासकों में से कुछ पूर्णतः जैन धर्म का समर्थन करते थे। बालि से दक्षिण–पूर्व में 5 मील की दूरी पर सेवाड़ी से अभिलेख प्राप्त हुआ जो सेवाड़ी के भगवान महावीर के मंदिर के गलियारे के दरवाजे पर उत्कीर्ण है।[14] इसमें जैन धर्म के 15वें तीर्थंकर धर्मनाथ की प्रतिदिन पूजा हेतु उपहार देने का वर्णन प्राप्त होता है। यहीं से 1172 विक्रम संवत का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ जिसमें अश्वराज एवं उसके पुत्र के द्वारा आठ द्रम माघ माह में शिवरात्रि के दिन शांतिनाथ की पूजा हेतु दान करने का वर्णन मिलता हैं इस वंश के शासक रायपाल का सम्बन्ध भी जैन धर्म से था। इसके काल में भी जैन धर्म से सम्बन्धित पांच अभिलेख प्राप्त हुये है। विक्रम संवत 1189 के अभिलेख में जैन संतों के लिए रायपाल के दो पुत्रों रूद्रपाल तथा अमृतपाल के द्वारा उपहार देने का वर्णन है। विक्रम संवत 1195 के नडलई

के नेमिनाथ मंदिर से प्राप्त अभिलेख में ठाकुर राजदेव का वर्णन प्राप्त होता है जो अपनी आय का 1/20वां भाग दान कर देता है, साथ ही नेमिनाथ के मंदिर में दीप, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य का वर्णन भी इस अभिलेख में किया गया है।[15] अन्य अभिलेखों में राजदेव का वर्णन प्राप्त होता है जो एक व्यापारी वर्ग का प्रतीत होता है। इसके द्वारा राजाओं से मंदिर के देख–रेख करने की विनती की गयी है इस वंश के शासक आल्हण के किराडू अभिलेख से राजा एवं इसके पुत्रों का जैन धर्म के प्रति अटूट विश्वास सिद्ध होता है। कल्हणदेव के पांचवे जैन अभिलेख (विक्रम संवत 1236) ओसिआ की संचिकादेवी मंदिर का वर्णन करता है। ये देवी जैन देवताओं के परिवार से सम्बन्धित थी। कल्हण देव के लगभग छः अभिलेख प्राप्त हुये है। इनमें से विक्रम संवत 1249 ई. का अभिलेख, विक्रम संवतः 1236 का अभिलेख सम्मिलित है। रानियों के द्वारा दिये जाने वाले दान राजा के व्यक्तिगत आय में सम्मिलित होते थे। इन दानों के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ भी जैन धर्म में विश्वास रखती थी।

राजस्थान के परमार राजवंश के समय में भी जैन धर्म का विकास हुआ। इस काल में चन्द्रावती जैन केन्द्र के रूप में विख्यात था जो अबू के निकट स्थित था। यहाँ से भी जैन अभिलेख प्राप्त हुये हैं। यहाँ पर विक्रम संवत 1095 में बुद्धिसागर एवं जिनेश्वर के शिष्य धनेश्वरमुनि ने चन्द्रावती पर कथासुरसुन्दरी की रचना की थी।[16] इस काल में धारवर्ष का झलौदी अभिलेख वर्धमान की प्रार्थना के साथ प्रारम्भ होता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रवती से प्राप्त विभिन्न अभिलेख तथा साहित्यों से यह प्रमाणित होता है कि परमार शासकों के हृदय में जैन शिक्षाओं के प्रति अगाध सम्मान था। यह क्षेत्र खरतार गच्छ के विद्वानों से सम्बन्धित था। विविधतीर्थकल्प से यह प्राप्त होता है कि यह स्थान चन्द्रप्रभा मंदिर के रूप में भी विख्यात था। बांसवारा के परमार शासकों द्वारा भी जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया गया। यहां भी जैन धर्म से सम्बन्धित विक्रम संवत 1159 तथा 1166 विक्रम संवत के अभिलेख प्राप्त हुये है। राजस्थान की एक अन्य गुहिल शाखा को भी जैन धर्म के संरक्षक के रूप में जाना जाता था। यहाँ तक कि उत्तर गुहिल शासकों में सामन्तसिम्हा, जैनसिम्हा, तेज सिम्हा, समर सिम्हा ने भी जैन अभिलेखों की स्थापना करवायी। इनमें विक्रम संवत 1324 ई. के चित्तौड़ अभिलेख, विक्रम संवत 1330 का चिरवा अभिलेख प्राप्त होता है। चित्तौड़ से प्राप्त एक अन्य अभिलेख में यहाँ के जैन मंदिर के निर्माण का वर्णन प्राप्त होता है। इनसे यह सिद्ध होता है कि श्वेताम्बर जैन धर्म में राजाओं के द्वारा व्यक्तिगत् रूचि ली गयी थी।

पाँचवीं शताब्दी के बाद से जैन धर्म पाण्ड्य शासकों के संरक्षण के कारण शक्तिशाली रूप धारण करने लगा था। 6वीं शताब्दी ई. में राजकीय धर्म के रूप में हिन्दू धर्म को संरक्षण दिया, परन्तु जैन धर्म के द्वारा प्रतिदिन के कार्यों में सरल नियमों के पालन से जन सामान्य में इनका प्रसार अधिक हो सका। लोगों के मध्य इसकी स्वीकारोक्ति का एक मुख्य कारण राजाओं के द्वारा इसके प्रति सम्मान था। जैन धर्म के दक्षिण भारत में विकास को इस बात से जान सकते है कि तंजौर में जन्म लेने वाले ब्राह्मण सम्बन्दर तमिल भूमि पर शैव धर्म का प्रसार करने हेतु अत्यन्त उत्साहित थे एवं अपनी दस में से एक कविता में जैन धर्म को श्रापित करने की बात कहते थे।[17] इसके बाद भी मदुरा में जैन धर्म की जड़े अधिक मजबूत थी। पाण्ड्य शासकों में सुन्दर पाण्ड्य नामक शासक जैन धर्म का कट्टर समर्थक था। पल्लव शासकों ने भी जैन धर्म को समर्थन प्रदान किया। चोल शासकों द्वारा शैव धर्म को संरक्षण देने के बाद भी इन शासकों ने जैन धर्म का अपमान नहीं किया। छठी एवं सातवीं शताब्दी में तमिल देश में जैनों के द्वारा राजनैतिक हस्तक्षेप भी किया गया।

दक्षिण भारत में जैन धर्म के विकास का श्रेय अप्पार को जाता है। इन्होंने धर्मसेन के अधीन तिरूप्पलियूर में मठीय जीवन प्रारम्भ किया था। इन्होंने पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन के पुत्र नरसिंह वर्मन प्रथम को जैन धर्म में परिवर्तित किया। पेरियपुराणम के अनुसार इन सन्तों को अत्यधिक सताया जाता था। अप्पार की रचना इन बातों को भी प्रकाशित करती है। कलभ्र के

आक्रमण से लेकर कुन पाण्ड्य के मत परिवर्तन तक जैनों ने राज्य की नीतियों पर भी अधिकार कर लिया था।[18] कुन पाण्डय के मत परिवर्तन के पश्चात् ही हजारों जैनियों को देश से बाहर निकाला गया साथ ही उनका शैव धर्म में जबर्दस्ती परिवर्तन भी करवाया। सातवीं या आठवीं शताब्दी में जैन भिक्षु मदुरा के चारों तरफ की पहाड़ियों में निवास करते थे। ये प्राकृत भाषा का प्रयोग करते थे। सम्बन्दर ने इनकी तुलना उन बन्दरों से की जिन्हें धर्मतत्वविषयक विवाद अत्यन्त प्रिय थे तथा दूसरे धर्म के नेताओं को परास्त करने में इन्हे सुख प्राप्त होता है।[19] इनके प्रसार को देखकर अलवार सन्त भी पूर्व मध्य काल में दक्षिण भारत में इनके विरोधी हो गये थे। दक्षिण भारत में नयनार एवं अलवार मत के उदय होने से जैन धर्म दक्षिण भारत में अल्प विकसित हो सका। पूर्व मध्य काल का उत्तरार्ध जैन धर्म का दक्षिण भारत में अवनति का काल रहा।

पूर्वमध्य काल में जैन धर्म उत्तर भारत में अधिक विकसित नहीं हो सका। उत्तर प्रदेश में देवगढ़ तथा मथुरा से ही जैन मंदिर समूह प्राप्त हुये है। देवगढ़ को 9वीं शताब्दी ई. में लच्छागिर के नाम से जाना जाता था, जो आगे चलकर कीर्तिगिरि नाम से प्रसिद्ध हुआ।[20] अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र होने के बाद भी इससे सम्बन्धित साहित्य यहाँ से प्राप्त नहीं होते है। देवगढ़ क्षेत्र चन्देलों से सम्बन्धित रहा हैं इसके अतिरिक्त मथुरा भी जैन धर्म के केन्द्र के रूप में जाना गया। यहाँ से पूर्व मध्य काल के तीन अभिलेख प्राप्त हुये है। इनमें पहला अभिलेख विक्रम संवत 1038 का श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, दूसरा अभिलेख विक्रम संवत 1080 का दिगम्बर से तथा तीसरा अभिलेख विक्रम संवत 1034 ई का पुनः श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। तत्कालीन साहित्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा पूर्वमध्यकाल के उत्तरार्ध से ही जैन धर्म के केन्द्र के रूप प्रसिद्ध हुआ। उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों से भी जैन धर्म से सम्बन्धित तीर्थों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इन क्षेत्रों में उड़ीसा, सिंध, पंजाब, बंगाल, बिहार आदि आते है।

हर्ष के पश्चात्राजपूत काल या पूर्व मध्यकाल का उदय होता है। त्रिपक्षीय संघर्ष के समाप्त होने के पश्चात् प्रतिहारों ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। चन्देलों के समय में प्रचलित जैन धर्म का प्रचार–प्रसार प्रतिहारों के समय से ही प्रारम्भ होता है। प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम ने जैन सन्त यक्षदेव को संरक्षण प्रदान किया था। इस वंश के शासक वत्सराज और नागभट्ट के काल में कुवलयमाला एवं हरिवंश पुराण की रचना की गयी तथा अनेकों जैन मंदिरों का निर्माण भी करवाया गया।[21] चूंकि चन्देल प्रतिहारों के सामन्त के रूप में शासन करते थे। अतः ये भी शैव मतावलम्बी होने के बाद भी अन्य धर्मो के प्रति सहिष्णु रहे होगें।

जैन धर्म को जिस प्रकार का आश्रय दक्षिण भारत, राजस्थान, गुजरात में प्राप्त हुआ उस प्रकार का संरक्षण उत्तर भारत में प्राप्त नहीं हो सका। चन्देलों के शासन काल ब्राह्मण धर्म के साथ–साथ जैन धर्म भी बुन्देलखण्ड में विकसित हो रहा था। चन्देल राजाओं की राजधानी खजुराहो तथा महोबा में निर्मित जैन मंदिर से प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट शासकों की भांति चन्देलों ने भी जैन धर्म को सहायता प्रदान की। शिव और विष्णु के अनन्य सेवक चन्देलों की उदारता का ज्ञान इससे होता है कि शिव और विष्णु के मंदिर के समीप ही जैननाथ एवं पार्श्वनाथ मंदिर बनाने की स्वतंत्रता प्रदान कर दी।[22] पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत में जैन धर्म सतलज तक विस्तृत था। इस काल में जैन धर्म के केन्द्रों के रूप में देवगढ़, चांदपुर, थुबौन, ग्वालियर, चन्देरी, अहार इत्यादि प्राप्त होते हैं। चन्देलों के समय में भी यह अधिकतर वैश्यों के मध्य विकसित रूप में थी। शासकों द्वारा जैन धर्म को सम्मान देने का एक अन्य कारण यह भी था कि ये अधिक रूचि से देश एवं समाज के लिए कार्य भी करते थे। उदाहरण– आचार्य दीपांकर ने बौद्ध धर्म को तिब्बत में फैलाने के लिए वहाँ के शासक को पराजित करने हेतु दो विरोधी शक्तियों को आपस में एक जुट करने का कार्य किया।[23] इन्होंने हिन्दू धर्म के विरूद्ध कोई भेदभाव पूर्ण कार्य नहीं किये, शायद इसी कारण इन्हें स्वयं की सामाजिक एवं आर्थिक

स्थिति को सुदृढ़ करने का अनुकूल वातावरण प्राप्त हो सका। अतः अधिकांश हिन्दू शासक एवं व्यापारी भी हिन्दू तथा जैन धर्म में विशिष्टता रखने लगे थे।

चन्देल कालीन जैन धर्म की विशेषता इस पर किसी अन्य धर्म का प्रभाव नहीं होना था। इस काल में जैन साहित्य का उन्नयन हुआ। महाराज हर्षवर्धन के राजकवि मानतुंग ने 'भक्तामर तथा भयहर' स्तोत्र की रचना की तथा वत्प भट्टि ने अपने राज शिष्य कन्नौज नरेश महाराज यशोवर्मन के पुत्र अम हेतु सरस्वती स्त्रोत लिखा।[24] बुन्देलखण्ड में प्राप्त जैन मंदिरों तथा मूर्तियों से चन्देलों के उद्‌भव के समय उनकी उन्नत अवस्था का बोध होता है। वैश्यों के मध्य अधिक विकसित होने के कारण समय–समय पर अनेकों धनी भक्तों ने जैन मंदिरों का निर्माण करवाया था। जगह–जगह पर जैन मूर्तियों के प्राप्त होने के कारण उनके बुन्देलखण्ड में प्रसार का बोध भी होता है। जैन भक्त मात्र मंदिर निर्माण ही नहीं करवाते थे अपितु उनकी रक्षा तथा जैन साधुओं की वृत्ति की व्यवस्था भी करते थे। इस क्रम में खजुराहो जैन मंदिर का 1011 विक्रम संवत अभिलेख में पाहिल का वर्णन प्राप्त होता है जिसने जैन मंदिर हेतु दान भी दिया एवं राजा से उनकी सुरक्षा हेतु आग्रह भी किया।[25] अन्य जैन अभिलेखों में खजुराहों के तीन अभिलेखों में प्रथम दो में जैन भक्त श्रेष्ठिन पाणिधर का तथा तीसरे अभिलेख विक्रम संवत 1215 में साधु द्वारा प्रदत्त जैन मूर्ति का निर्देश है।[26] पपौरा जैनियों का महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल था। जहाँ प्रत्येक युग में अनेक जैन यात्री श्रद्धांजलि अर्पित करते थे।

निष्कर्षः–

इस प्रकार जैन धर्म जिसका उत्थान महावीर स्वामी के समय में उत्तर भारत में हुआ वह शनैः शनैः द्वितीय जैन संगीति तक इस क्षेत्र में अवनति की स्थिति प्राप्त करने लगा। पूर्वमध्य काल में जैन धर्म का विकास गुजरात, राजस्थान तथा दक्षिण के क्षेत्रों में अधिक हुयी। इन सभी क्षेत्रों में गुजरात जैन धर्म के लिए अधिक श्रेष्ठ स्थल प्रतीत होता है। क्योंकि इस काल में इन क्षेत्रों में जैन धर्म को अधिक संरक्षण प्राप्त हुआ तथा इनसे सम्बन्धित निर्माण कार्य भी करवाये गये। अधिकांश अभिलेखों में जैन धर्म के प्रति सम्मान की बात कही गयी है। चूंकि पूर्व मध्यकाल में राजपूत शासक शक्ति के रूप में शिव की उपासना को अधिक महत्व देते थे। परन्तु राष्ट्रकूटों के समय में इन्हें भी संरक्षण दिया गया। यह धर्म पूर्ण रूप से राजकीय धर्म न बन सका। परन्तु वैश्यों एवं कुछ जन मानस के मध्य भी विकसित हो सका।

दक्षिण भारत के अतिरिक्त राजस्थान के क्षेत्र में भी इसने अपना प्रसार किया। क्योंकि वहाँ के शासकों के रूप में चाहमान, गुहिल आदि ने इन्हें संरक्षण दिया एवं उनके द्वारा जैन धर्म को दिये दान के उल्लेख में यह सिद्ध होता है कि इनके हृदय में भी जैन धर्म के प्रति सम्मान की भावना थी। वर्तमान उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में पूर्व मध्य काल में जैन धर्म का विकास अधिक नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ पर शैव आचार्यों ने इन्हें समाप्त करने का सम्पूर्ण प्रयत्न किया। प्रतिहारों के पश्चात मध्य भारत में जैन धर्म का विकास पुनः प्रारम्भ हुआ। चन्देलों के समय में विभिन्न सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा से यह संकेत मिलता है कि इनमें आपसी कलह नहीं थी। ये सभी धर्म धार्मिक सहिष्णु हो चुके थे। लोगों को यह अनुभव हो चुका था कि ब्राह्मण बौद्ध, जैन तथा अन्य सम्प्रदायों में कोई भेद नहीं है तथा ये सभी सनातन धर्म अर्थात हिन्दू धर्म का ही एक रूप है।

संदर्भ सूची

1- महाराज, महर्षि सन्तसेवी, द हार्मनी ऑफ आल रिलीजन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2006, पृ. 94

2- वैद्य, सी.वी. हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिन्दू इण्डिया(बींग ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया फ्रॉम 600 टू 1200 ए .डी.) द ओरिएंटल बुक सप्लाइंग एजेंसी, पूना, 1924, पृ. 203

3- झा, द्विजेन्द्र नाथ और श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्व, विद्यालय 2015, पृ. 406

4- बागी, एम. एल., एन्शियन्ट इण्डिया : कल्चर एण्ड थॉट, द इण्डियन पब्लिकेशन, अम्बाला कैन्ट, 1978, पृ. 113
5- सेठ, चिमनलाल भाई लाल, जैनिस्म इन गुजरात (ई. 1100 से 1600) श्री विजयदेव सुर संथ समिति, पिढोनी, बॉम्बे–3, 1953, पृ XII
6- वही
7- चटर्जी, असीम कुमार, ए कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ जैनिस्म (1000ई. टू 1600ई.) संस्करण–II, फिरमा के.एल.एम. प्रा0 लि0, कलकत्ता, 1984, पृ. 02
8- एफीग्राफी इण्डिका, संस्करण–33, पृ. 235
9- वही, ए कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ जैनिस्म, पृ. 18
10- जैन, कैलाश चन्द्र, जैनिस्म इन गुजरात, जैन संस्कृति समराक्षिका संघ, सोल्हापुर, 1963, पृ. 17
11- वही
12- वही, पृ. 18
13- एपी. इंडि., संस्करण 26, पृ. 84
14- एपी. इंडि., संस्करण 11, पृ. 28
15- पूर्वोक्त, ए कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ जैनिस्म, पृ. 44
16- वही, पृ. 51
17- आयंगर, एम.एस. रामास्वामी, स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनिस्म, द प्रीमियर प्रेस, मद्रास, 1922, पृ. 62
18- वही, पृ. 67
19- वही, पृ. 69
20- पूर्वोक्त, ए कम्प्रहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ जैनिस्म, पृ. 65
21- पनगड़िया, बी.एल.,एन.सी. पहाड़िया, पॉलिटिकल,सोसियो–इकोनॉमिक एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान (अर्लियस्ट टाइम टू 1947), पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1947, पृ. 38
22- मिश्र, केशव चन्द्र चन्देल एवं उनका राजस्व काल, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, संवत 2011, पृ. 203
23- बाजपेयी, के. डी., कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, मध्य प्रदेश, संस्करण–1, प्रज्ञा प्रकाशन, कानपुर, 1975, पृ.74
24- पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968, पृ. 168
25- वही, पृ. 170
26- वही